IJAER/January-February 2017 /Volume-6/Issue-1 ISSN: 2278-9677
International Journal of Arts & Education Research

दलीय व्यवस्था का विकास: स्वरूप, समस्याएं एवं समाधान (भारत के विशेष संदर्भ में)

डॉ मंजुलता शर्मा

व्याख्याता-राजनीति विज्ञान

राजकीय महाविद्यालय निवाई .टोंक राजस्थान

सार

किसी भी लोकतंत्र में दलीय व्यवस्था बातचीत एवं विभिन्न दलों के बीच प्रतिस्पर्धा का तरीका है। भारत में इसी व्यवस्था ने बहु - दलीय प्रणाली को जगह दी है । इस प्रकार की व्यवस्था अभी हाल ही के दशकों में ज्यादा देखने को मिली है बजाय पहले के समय में । पहले जो व्यवस्था कायम थी। वो काँग्रेस पार्टी के वर्चस्व का समय था । इस चरित्र को सही तरीके से रजनी कोठारी ने समझाया है। उन्होंने काँग्रेस की व्यवस्था को वर्चस्व वाली व्यवस्था माना है। भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस बहुत प्रभावी एवं सशक्त राजनीतिक पार्टी थी, इसने विधान सभा एवं संसद में अपनी स्थिति मजबूत कायम की एवं इसका सांगठनिक ढाँचा भी बहुत मजबूत था । कोठारी ने इस व्यवस्था को "काँग्रेस व्यवस्था' कहा था, जबकि जोन्स ने " काँग्रेस प्रभुत्व व्यवस्था" माना था । हाल ही के वर्षों में दलीय व्यवस्था में काफी परिवर्तन हुआ है। ये बदलाव 1967 से शुरू हुए लेकिन इनमें ज्यादा परिवर्तन 1980 से 1990 के बीच ज्यादा हुआ। इस दौरान एक दलीय व्यवस्था से बहुदलीय व्यवस्था का आगमन हुआ। इसे हम संघीय दल व्यवस्था या गठबंधन दलीय व्यवस्था भी मान सकते हैं। 2014 से भारत में भारतीय जनता पार्टी एक सबसे अधिक वर्चस्व वाले दल के रूप में उभरी है । हम इस इकाई में विशेष रूप से राज्य स्तर पर विकसित दलीय व्यवस्था पर अपना ध्यान केन्द्रित करेंगे। लेकिन ऐसा करने से पूर्व हम संक्षिप्त में क्षेत्रिय एवं राज्य स्तरीय दलों के बारे में जानकारी लेंगे क्योंकि ये दल हाल ही के वर्षों में बड़ी तेजी से उभरकर सामने आये हैं तथा ये भारतीय राजनीति में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

मुख्यशब्दः *दलीय व्यवस्था, दलों के बीच प्रतिस्पर्धा, राजनीतिक पार्टी*

परिचय

प्रतिनिधि लोकतंत्र के आधुनिक रूप ने दलीय प्रणाली को प्रत्येक राजनीतिक समाज में एक अपरिहार्य कारक के रूप में प्रस्तुत किया है ताकि यह नियम निर्धारित हो सके कि राजनीतिक दल किसी न किसी रूप में सर्वव्यापक हैं। आधुनिक राज्यों में राजनीतिक दल महत्वपूर्ण तथा अनिवार्य संस्था बन चुके हैं। समूहों को संगठित करते हैं तथा राजनीतिक सत्ता के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं। किसी भी पद्धति में उनकी भूमिका इस तथ्य से प्रमाणित होती है कि आगे या पीछे किसी न किसी तरीके से अच्छाई या बुराई, संदेह तथा विरोध के बावजूद उनका उदय सभी राज्यों में हो चुका है 1

राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिक दलों की कार्य प्रणाली उनकी संरचनाओं और इन संरचनाओं को निर्धारित करने वाले कारकों से निरूपित होती है। इस आधार पर एक -दलीय व्यवस्थाओं व दो या बहुदलीय व्यवस्थाओं में कोई विशेष अन्तर नहीं रह जाता है गहराई से देखने पर विभिन्न प्रकार की दल व्यवस्थाओं में दलों के द्वारा किये जाने वाले कार्य व राजनीतिक व्यवस्था की आवश्यकताओं की पूर्ति में उनकी भूमिका मोटी समानता रखती है। अतः दल प्रणाली दो या दो से अधिक दलों का स्वतंत्र व खुले चुनावों में प्रतियोगी होना है, सही प्रतीत नहीं होता है 12

Copyright@ijaer.org

यह व्यवस्था इस बात पर आधारित है कि दो या दो से अधिक प्रतियोगी दल न होने पर राजनीतिक प्रक्रिया के प्रकटीकरण में मौलिक अन्तर आ जाता है। हम एक दल व्यवस्था की अवधारणा को लें तो सही अर्थों में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं हो सकती। अगर दल व्यवस्था का अर्थ निर्वाचन प्रतियोगिता प्रक्रिया में दलीय इकाइयों की अन्तःक्रिया है तो एक दल व्यवस्था का विचार बेहूदा है क्योंकि केवल एक ही दल में प्रतियोगिता या अन्तः क्रिया नहीं हो सकती ।

मौरिस डूवर्जर के अनुसार एक दल वाली शासन व्यवस्थाओं में भी निर्वाचन प्रतियोगिता होती है। उनके अनुसार– “प्रतियोगिता की मात्रा एक चर के रूप में दलों के स्वरूप और प्रकार के रूप से अधिक महत्वपूर्ण है। उन्होंने नाजी जर्मनी, फासिस्ट इटली, सालजार के समय में पुर्तगाल तथा 1923 से 1950 तक तुर्की का उदाहरण देते हुए माना है कि यहाँ एक दलीय व्यवस्था के बावजूद निर्वाचन प्रतियोगिता का अभाव नहीं था।

इस प्रकार दल प्रणाली के अध्ययन में हमें राजनीतिक और परा राजनीतिक दलों के जाल का और उन सबके अलावा उन सभी संगठनों का भी अध्ययन करना पड़ता है जो डूवर्जर के शब्दों में 'परोक्ष दलों की भूमिका अदा करते हैं। ऐसा होने की स्थिति में अध्ययन का और भी विस्तार हो जाता है जिसमें हर एक राजनीतिक दल को शामिल किया जाता है चाहे वह बड़ा हो या छोटा, वह राष्ट्रीय स्तर पर, क्षेत्रीय स्तर पर या स्थानीय स्तर पर कार्य करता हो। मौरिस जोन्स का भी विचार है कि- "ऐसी प्रत्येक राजनीतिक प्रणाली में जो अपने स्वतंत्र नागरिकों को शासन के काम मे हाथ बंटाने का थोड़ा या अधिक अवसर प्रदान करती है, राजनीतिक दल अवश्य होते हैं। आम तौर पर इन दलों की प्रकृति और इनका स्वरूप ही वे प्रमुख साधन होते हैं जिनके द्वारा समाज और राजनीति के बीच सम्बन्धों को समझा जा सकता है। समाज के विभिन्न समूहों के लोगों के हितों और विचारों के अनुसार राजनैतिक प्रणाली का रूप निर्धारित होता है और राजनीतिक प्रणाली पर इनका रंगभी चढ़ता है और इस प्रकार सम्पूर्ण राजनीतिक प्रणाली उसके अनुरूप ही महत्वपूर्ण ढंग से आकार ग्रहण करती है। चूंकि समाज और राजनीति के सम्बन्ध केवल एक ही दिशा में नहीं होते, अतः हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि जो राजनीतिक संस्थाएं होती हैं वे भी कई प्रकार से दल प्रणाली पर गहरा प्रभाव डालती हैं और दल प्रणाली में सामाजिक ढांचे के भीतर परिवर्तन कर पाने की क्षमता प्रदान करती वास्तव में प्रजातंत्र के अन्तर्गत शासन व्यवस्था के दो मुख्य स्रोत होते हैं- संविधान और संविधानेतर शासन के सफल संचालन में इन दोनों का ही समान महत्व है। दोनों भिन्न हैं और एक दूसरे के पूरक हैं। यदि संविधान शासन का ढाँचा प्रदान करता है तो संविधानेतर अंग उस ढाँचे को मांस और रूधिर प्रदान कर उसे गतिशील बनाता है। राजनीतिक दल शासन के इसी संविधानेतर पहलू का आदर्श उदाहरण है जो प्रजातंत्र की महत्वपूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। यहाँ तक की साम्यवादी और फासिस्टवादी व्यवस्था में भी राजनीतिक दलों का इतना व्यापक महत्व होता है कि हम दल और शासन में व्यावहारिक रूप से कोई अन्तर नहीं करते। दलीय व्यवस्था प्रजातंत्र की आधारशिला और इसका प्राण है।

किसी राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिक दल का आविर्भाव क्यों होता है, इनके अस्तित्व निर्माण तथा सशक्तीकरण के लिए कौन सी परिस्थितियाँ कारक के रूप में कार्य करती हैं, दल सामाजिक शक्तियों को किस प्रकार संगठित और गतिशील करते हैं, किस प्रकार सामाजिक व्यक्ति को राजनीतिक विषयों के प्रति लामबन्द करके अपने उद्देश्यों व लक्ष्यों की पूर्ति करते हैं, सामाजिक जीवन की समुन्नति, समृद्धि और सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए दलों द्वारा विकास का जो मार्ग अपनाया जाता है क्या वह औचित्यता पर आधारित है।

राजनीतिक दल का अर्थ और दलीय व्यवस्था

राजनीतिक वैज्ञानिकों के बीच राजनीतिक दलों एवं उनके अर्थ एवं लक्ष्यों के बारे में एक सामान्य राय है। एक राजनीतिक दल एक संगठन है जिसका उद्देश्य प्रतिनिधियों के माध्यम से सरकार में शामिल होना या सरकार बनाना है। इसका प्रमुख

उद्देश्य सत्ता प्राप्त करना है। उम्मीदवार राजनीतिक दलों के सदस्यों के रूप में चुनाव लड़ते हैं तथा वे विधायी निकायों में लोगों का प्रतिनिधित्व करते हैं। राजनैतिक दल एक लोकतांत्रिक देश में अलग-अलग लोगों का समर्थन पाने के लिये प्रतिस्पर्धा करते हैं । स्केवार्ज एवं लॉसन के अनुसार (2005) राजनीतिक दल "एक ऐसा संगठन है जो उम्मीदवारों को चुनाव में खड़े होने के लिये नामित करता है और सरकार में प्रतिनिधियों को जगह देना चाहता है"। दलीय व्यवस्था किसी देश में राजनीतिक दलों की संख्या को निरूमित करती है। एक दलीय व्यवस्था के अंदर एक दल की उपस्थिति को दर्शाता है जहाँ अन्य दल अनुपस्थित रहते हैं या उनका कोई महत्व नहीं होता है। द्वि-स्तरीय व्यवस्था में दो दलों की उपस्थिति होती है जबकि बहुदलीय व्यवस्था में अनेक राजनैतिक दल होते हैं। इस प्रकार भारतीय राज्य में दलों की संख्या की उपस्थिति उनकी प्रकृति को दर्शाती है। चुनाव आयोग उनके समर्थन एवं मान्यता के आधार पर राजनीतिक दलों को राष्ट्रीय, राज्य / क्षेत्रीय, गैर-मान्यता प्राप्त दल के रूप में वर्गीकृत करता है। कई मौके पर खासकर चुनाव लड़ने या सरकार का गठन करने में राजनीतिक दल गठबंधन या मोर्चा बनाते हैं। ऐसे गठबंधनों की सदस्यता राजनीतिक दलों की जरूरतों के अनुसार परिवर्तित होती रहती है ।

उद्देश्य

1. दलीय व्यवस्था की परिभाषा एवं क्षेत्रीय तथा राज्य पार्टियाँ,
2. विभिन्न काल में प्रभावी दलीय व्यवस्था को जानना,

राज्यों में बहुदलीय व्यवस्था

उत्तर प्रदेश, बिहार, तमिलनाडु एवं अन्य कई राज्यों में बहु - दलीय व्यवस्था है। उत्तर-प्रदेश, बिहार और तमिलनाडु के उदाहरणों के साथ इस अनुभाग में हम राज्य दलीय व्यवस्था की चर्चा करेंगे। 1990 के दशक से भारत में बहु-दलीय व्यवस्था, राज्यों की प्रमुख विशेषता बन गई थी। बी.एस.पी. के उदय के साथ 1980 के अंत में दलों का गुणात्मक स्वरूप देखने को मिला था। बी.एस.पी. ने समाज बहुजन के वर्गों की समस्याओं को सुलझाने पर जोर दिया था। बी.एस.पी., ओ.बी.सी., महिलाओं, धार्मिक अल्पसंख्यकों एवं समाज के वंचित वर्गों की पार्टी हैं। यद्यपि बी. एस. पी. का समर्थन आधार समाज के विभिन्न वर्गों में है, लेकिन, इसके ज्यादातर समर्थक दलित समुदाय से आते हैं। इस पार्टी की नेता मायावती 1990 और 2010 के मध्य चार बारमुख्यमंत्री बनी है। इसने वंचित वर्गों के कल्याण के लिये कई प्रकार के कार्यक्रम किये। तथा इसने दलित एवं वंचित वर्गों की सांस्कृतिक पहचान को भी आगे बढ़ाया। बी. एस. पी. के अलावा इस दौरान उत्तर प्रदेश में अन्य दल भी अस्तित्व में थे। इनमें बी.जे.पी., काँग्रेस, जनता दल, आर. एल. डी. तथा समाजवादी पार्टी प्रमुख पार्टियां थी । इनके अलावा भी अन्य जाति आधारित छोटी-छोटी पार्टियां भी राज्य में विधयमान थी । इन राजनीतिक दलों में जनता दल जिसकी स्थापना 1988 में हुई थी बहुत कम समय तक ही अस्तित्व में था । अपने गठन के कुछ समय बाद ही उत्तर प्रदेश में जनता दल का विभाजन हो गया और वह दो दलों में बंट गया। इनमें एक अजीत सिंह के नेतृत्व में आर. एल. डी. तथा दूसरा मुलायम सिंह यादव के नेतृत्व में समाजवादी पार्टी के तौर पर सामने आया था। कई समय तक उत्तर प्रदेश में विभिन्न राजनीतिक दलों का प्रभाव चुनावों में अलग-अलग रहा है। इस दौरान काँग्रेस का प्रभाव कम हो गया एवं बी.जे.पी. तथा तथा अन्य पार्टियों का प्रभाव बढ़ने लगा । काँग्रेस के अलावा, एस. पी., बी.एस.पी., आर.एल.डी., बी.जे.पी. एवं अन्य जाति आधारित पार्टियों ने 1993 से 2007 तक सरकार बनाई या सरकार का हिस्सा थीं। ये दल सरकार बनाने में सहयोगी थे एवं गठबंधन का हिस्सा भी थे।

राज्यों में द्वि-दलीय व्यवस्था

भले ही वहुदलीय व्यवस्था राज्य पार्टी व्यवस्था में एक प्रमुख विशेषता बन गई है, लेकिन भारत में अभी भी कुछ राज्यों में दो दलीय व्यवस्था मौजूद है। राजस्थान और पंजाब उन राज्यों में कुछ ऐसे ही उदाहरण हैं जहाँ पर द्वि-दलीय व्यवस्था मौजूद हैं। यह उपखंड दो- दलीय व्यवस्था के बारे में है। ये उन राज्यों से भिन्न हैं जिनमें बहुदलीय व्यवस्था है, जैसे कि यू.पी. एवं बिहार । यहाँ पर जाति आधारित समूहों बहुदलीय व्यवस्था वाले राज्यों में अलग-अलग दल है, जैसे बी.एस.पी., एस.पी. आर. जे. डी. जे. डी. यू. इत्यादि। छोटी जातियों या एक ही जाति के छोटे दलों की उपस्थिति अस्तित्व नहीं है । तथापि, यहाँ पर भी कभी - कभी छोटे दलों का उदय देखा गया है। इस प्रकार इन राज्यों में मोटे तौर पर दो पक्षीय व्यवस्था रही है। दो दलीय व्यवस्था की उपस्थिति या बहुदलीय व्यवस्था की अनुपस्थिति का प्रमुख कारण राजनेताओं या सामाजिक समूहों / जातियों के नेताओं द्वारा अलग-अलग पार्टियों का गठन करना तथा सामाजिक और आर्थिक संरचनाओं में इनके समूहों के हितों को सरंक्षित रखना है। ये मुख्य दल ही दो दलीय व्यवस्था बनाते हैं। मुख्य दलों के भीतर गुटबाजी के अलावा उनके भीतर प्रतिस्पर्धा के परिणामस्वरूप प्रमुख दलों में विभाजन नहीं होता। और नई पार्टियों को इससे अलग होने की प्रेरणा मिलती है राजस्थान में दोनों दलों काँग्रेस एवं भाजपा ने दो दलीय व्यवस्था का प्रतिनिधित्व किया। इनमें से प्रत्येक दल ने राजस्थान में 1990 के दशक के समय सरकारें बनाई। राजनीतिक तौर पर प्रभावशाली जातियाँ जैसे जाट, राजपूत और ब्राह्मणों को दोनों पार्टियों में समायोजित किया गया है। अन्य जातियां जैसे दलित और अति पिछड़ा वर्ग राज्य में राजनीतिक तौर पर वंचित जातियां है। यू.पी. के विपरीत, वे अलग से दल बनाने में सक्षम नहीं है। हालांकि कुछ उच्च जाति और पिछड़े वर्गों के नेताओं में 1999 में अलग पार्टी (राजस्थान सोशल जस्टिस फोरम) बनाई जिसने काँग्रेस का विरोध किया राज्य में जाटों को ओ.बी.सी. में पहचान दिलाने के कारण किया था। यह पार्टी अपने अस्तित्व में आने के कुछ वर्षों में भीतर ही बंद हो गई। राज्य के कुछ क्षेत्रों जैसे सीकर, झुंझनू में सी.पी.आई. (एम) को समर्थन मिला। पंजाब में तीन पार्टियों ने अपनी उपस्थिति दर्ज की है, जिसे अकाली दल, काँग्रेस एवं बी.जे.पी. के नाम से जाना जाता है। अकाली दल को सिख समुदाय विशेषकर जाट सिख से समर्थन प्राप्त है। बी. जे. पी. के समर्थन का आधार ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में शहरी क्षेत्रों में अधिक है। पंजाब की राजनीति में अकाली दल और बी.जे.पी. सितंबर तक जब अकाली दल ने किसानों के मुद्दों पर भाजपा नीति राजग को छोड़ दिया, सहयोगी दल रहे हैं।

बहुदलीय व्यवस्था

देश का विशाल आकार, भारतीय समाज की विभिन्नता, सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार की ग्राह्यता, विलक्षण राजनैतिक प्रक्रियाओं तथा कई अन्य कारणों से कई प्रकार के राजनीतिक दलों का उदय हुआ है। वास्तव में विश्व में भारत में सबसे ज्यादा राजनैतिक दल हैं। वर्तमान में (2009), देश में सात राष्ट्रीय दल, 40 राज्य स्तरीय दल तथा 980 गैर-मान्यता प्राप्त पंजीकृत दल है। इसके अलावा भारत में सभी प्रकार के राजनैतिक दल है-वामपंथी दल, केंद्रीयदल दक्षिण पंथी दल, सांप्रदायिक दल, तथा गैर सांप्रदायिक दल आदि। परिणामस्वरूप त्रिसंकु संसद और त्रिसंकु विधान सभा तथा साझा सरकार का गठन एक सामान्य बात है ।

एकदलीय व्यवस्था

अनेक दल व्यवस्था के बावजूद भारत में एक लंबे समय तक कांग्रेस का शासन रहा । अतः श्रेष्ठ राजनीतिक विश्लेषक रजनी कोठारी ने भारत में एक दलीय व्यवस्था को एक दलीय शासन व्यवस्था अथवा कांग्रेस व्यवस्था कहा । कांग्रेस के प्रभावपूर्ण शासन में 1967 से क्षेत्रीय दलों के तथा अन्य राष्ट्रीय दलों जैसे-जनता पार्टी (1977), जनता दल (1989) तथा भाजपा (1991) जैसी प्रतिद्वंद्विता पूर्ण पार्टियों के उदय और विकास के कारण कमी आनी शुरू हो गई थी।

क्षेत्रीय दलों का उद्भव

भारत की दलीय व्यवस्था का एक दूसरा प्रमुख लक्षण राज्य स्तरीय दलों का उदय औरउनकी बढ़ती भूमिका है. कई प्रदेशों में वे सत्तारूढ़ दल हैं, जैसे- उड़ीसा में बीजेडी, आंध्र प्रदेश में तेलगूदेशम पार्टी तमिलनाडु में डीएमके या एआईएडीएमके, पंजाब में अकाली दल, असम में असम गण परिषद, जम्मू कश्मीर में नेशनल कांफ्रेंस, बिहार में जनता दल, आदि। प्रारंभ में वे क्षेत्रीय राजनीति तक ही सीमित थे किन्तु कुछ समय से केंद्र में साझा सरकारों के कारण राष्ट्रीय स्तर पर इनकी भूमिका महत्वपूर्ण हो गयी है। 1984 में तेलगू देशम पार्टी लोकसभा में सबसे बड़े विपक्षी दल के रूप में उभरा था।

दल बनाना तथा दल- परिवर्तन

भारत में दल बनाना, दल परिर्वतन, टूट, विलय, विखराव, ध्रवीकरण आदि राजनैतिक दलों की कार्यशैली का महत्वपूर्ण रूप है। सत्ता की लालसा तथा भौतिक वस्तुओं की लालसा के कारण राजनीतिज्ञ अपना दल छोड़कर दूसरे दल में शामिल हो जाते है या नया दल बना लेते हैं। चौथे आम चुनाव (1967) के बाद दल परिवर्तन में काफी तेजी आयी। इस घटना ने केंद्र तथा राज्य दोनों में राजनीतिक अस्थिरता पैदा की, तथा दलों के विघटन को बढ़ावा मिला। अतः दो जनता दल, दो तेलगू देशम पार्टी, दो डीएमके दो कम्यूनिष्ट दल, तीन अकाली दल, तीन मुस्लिम लीग आदि बनें।

राष्ट्रीय और राज्य स्तरीय दलों को

- निर्वाचन आयोग, निर्वाचन के प्रयोजनों हेतु राजनीतिक दलों को पंजीकृत करता है, और उनकी चुनाव निष्पादनता के आधार पर उन्हें राष्ट्रीय या राज्यस्तरीय दलों के रूप में मान्यता देता है अन्य दलों को केवल पंजीकृत गैर मान्यता प्राप्त दल घोषित किया जाता है । आयोग द्वारा दलों को प्रदान की गई मान्यता उनके लिए कुछ विशेषाधिकारों के अधिकार का निर्धारण करती है, जैसे- चुनाव चिन्ह का आवंटन, राज्य नियंत्रित टेलीविजन और रेडियो स्टेशनों पर राजनीतिक प्रसारण हेतु समय का उपबंध और निर्वाचन सूचियों को प्राप्त करने की सुविधा।
- प्रत्येक राष्ट्रीय दल को एक चुनाव चिन्ह प्रदान किया जाता है जो सम्पूर्ण देश में विशिष्ट : उसी के लिए आरक्षित होता है। दूसरी ओर, कोई पंजीकृत गैर-मान्यता प्राप्त दल शेष चुनाव चिन्होंसूची में से चिन्ह का चुनाव कर सकता है। दूसरे शब्दों में आयोग कुछ चिन्हों को आरक्षित चिन्हों, के रूप में निर्धारित करता है, जो मान्यता प्राप्त दलों के अभ्यर्थियों हेतु होते हैं और अन्य शेष चिन्ह, अन्य अभ्यर्थियों हेतु होते है ।

राजनीतिक दलों के गुण

राजनीतिक दलों के प्रमुख गुण निम्नलिखित हैं-

दल; मानवीय स्वभाव के अनुकूल - मानव स्वभाव की विभिन्नता उनके विचारों में परिलक्षित होती है। कुछ व्यक्ति उदार विचारों के होते हैं, कुछ अनुदार तथा कुछ क्रान्तिकारी । यह विभिन्नता विभिन्न दलों द्वारा अभिव्यक्त होती है। एक-से विचारों के व्यक्ति एक दल में संगठित हो जाते हैं। इसलिए दल मानव प्रकृति के अनुकूल हैं। दलों के अभाव में मानव प्रकृति अपने विचारों की अभिव्यक्ति विरोधी समूहों द्वारा खोजेगी, जिससे विचारों का सकारात्मक महत्त्व नष्ट हो जाएगा।

लोकतन्त्र की सफलता केवल दलों द्वारा ही सम्भव - राजनीतिक दल लोकतन्त्र के आधार-स्तम्भ हैं। इनके बिना लोकतन्त्र नहीं चल सकता है। ये चुनाव को सम्भव बनाते हैं, प्रचार करते हैं तथा जनमत को अपने पक्ष में करने का प्रयत्न करते हैं। कोई भी व्यक्ति बिना राजनीतिक दल के करोड़ों मतदाताओं के निर्वाचन क्षेत्र में चुनाव नहीं लड़ सकता है। साथ ही दल चुनाव के बाद संसद में अनुशासन बनाए रखते हैं, सरकार का निर्माण सम्भव बनाते हैं और विरोधी दल का कार्य

करते हैं। बिना दल के सरकार का निर्माण और संचालन असम्भव है। लीकॉक के अनुसार, "लोकतन्त्रीय सरकार के साथ सैद्धान्तिक विरोध होने पर भी यही एक तथ्य है, जो लोकतन्त्र को सम्भव बनाता है। अकेले रहकर व्यक्तियों के लिए शासन करना कठिन है। आधुनिक लोकतन्त्र राज्य इस कृत्रिम तथापि आवश्यक यन्त्र के बिना व्यक्तिगत मतों का समूह मात्र बनकर रह जाएगा।" राजनीतिक दल लोकतन्त्ररूपी रथ के पहिये होते हैं। जिस प्रकार पहियों के अभाव में रथ अपने मार्ग पर अग्रसर नहीं हो सकता है, उसी प्रकार राजनीतिक दलोंरूपी पहियों के अभाव में लोकतन्त्ररूपी रथ अपने मार्ग पर अग्रसर नहीं हो सकता है। ब्राइस के अनुसार, "राजनीतिक दल अनिवार्य हैं। कोई भी बड़ा स्वतन्त्र देश उनके बिना नहीं रह सकता है। "

क्रान्ति तथा उपद्रव से रक्षा - राजनीतिक दल देश की क्रान्ति से सुरक्षा करते हैं। ये चुनाव द्वारा परिवर्तन को सम्भव बनाकर क्रान्ति का विकल्प प्रस्तुत करते हैं। जब निश्चित समय पश्चात् चुनाव द्वारा शासन परिवर्तित करने का विकल्प है, तो क्रान्ति का आश्रय नहीं लिया जाता है। यदि कोई सत्ताधारी दल बेकार है और उसका ध्येय सभी लोगों के हितों के लिए कार्य करना नहीं है, तो मतदाता चुनाव द्वारा दूसरे दल को सत्ता सौंप देते हैं। दलीय सरकार जनमत से चलती है। मैकाइवर का कथन है, "दलीय व्यवस्था के बिना राज्य में न तो लोच ही आ सकता है और न सच्चा आत्मनिर्णय का भाव ही।"

राजनीतिक दलों के दोष

राजनीतिक दलों के प्रमुख दोष निम्नलिखित हैं-

असत्य राजनीतिक तथ्य - राजनीतिक दल विचारों की समानता का झूठा दावा करते हैं। यह एक कृत्रिम समझौता है, जहाँ सहमति व असहमति दोनों ही असत्य तथा अवसरानुकूल होती हैं। जनता व्यर्थ ही पक्षऔर विपक्ष में विभाजित हो जाती है। लीकॉक के अनुसार, "प्रत्येक पक्ष चेतन अविश्वास की मुद्रा में रहता है। तथा व्यक्तिगत निर्णय दल के निर्णय में जमकर समाप्त हो जाता है। "

गुटबन्दी – राजनीतिक दल गुटबन्दी की भावना उत्पन्न कर देश की एकता को खतरा उत्पन्न कर देते हैं। देश विरोधी गुटों में विभाजित हो जाता है, जो एक-दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयत्न करते हैं। इससे राष्ट्र कमजोर तथा प्रशासन दुर्बल होता है। गिलक्राइस्ट के शब्दों में, "इनसे राजनीतिक जीवन मशीनी तथा कृत्रिम बनता है। विरोधी दल सदैव शासक दल का शत्रु होता है।" वाशिंगटन ने कहा था – "यह (राजनीतिक दल) जाति को दूषित ईर्ष्याओं से व झूठे भयों से ग्रसित करती हैं, पारस्परिक शत्रुता को उत्तेजित करती है तथा कभी-कभी उपद्रवों और राजद्रोहों को रचती है। "

दूसरे दलों के योग्य व्यक्तियों को शासन में स्थान नहीं दिया जाना — दल व्यवस्था में विजयी दल सरकार बनाता है। विरोधी दल के योग्य व्यक्ति भी शासन नहीं कर पाते हैं, बहुमत प्राप्त दल केवल अपने दल की ही सरकार बनाते हैं। 'राजनीतिक सजातीयता' के कारण राष्ट्र अनेक योग्य व्यक्तियों की सेवाओं से वंचित रह जाता है।

दलीय हितों को प्रोत्साहन - दल व्यवस्था में दलीय हित राष्ट्रीय हितों से भी ऊपर हो जाते हैं। विरोधी दल का ध्येय राष्ट्रीय हितों के मूल्य पर सत्ताधारी दल का निरन्तर विरोध करना हो जाता है। उसके अच्छे कार्यों की भी आलोचना की जाती है। शासक दल अपने दल की स्थिति सुदृढ़ करने में लगा रहता है। इससे सार्वजनिक गतिविधियों को गहरी चोट पहुँचती है तथा राष्ट्र का हित निरन्तर खतरे में रहता है। शत्रुता, कड़वाहट, ईर्ष्या, द्वेष तथा संघर्ष समस्त राष्ट्रीय जीवन को दूषित कर देते हैं।

खोखलापन तथा पाखण्ड - दल व्यवस्था खोखली तथा पाखण्डपूर्ण होती है। दल मौलिक सिद्धान्तों पर विभाजित नहीं होते हैं, वरन् सहमति तथा असहमति का दम्भ भरते हैं। निरन्तर दल-बदल होता रहता है, परन्तु सिद्धान्तों का झूठा दावा होता रहता है। चुनाव के समय दावे केवल सत्ता प्राप्त करने के लिए होते हैं। इन बातों से दलों का खोखलापन व्यक्त होता है। इसलिए दलीय व्यवस्था की 'व्यवस्थित पाखण्ड ' कहकर आलोचना की जाती है।

व्यक्तित्व का विनाश - दलों का कठोर अनुशासन व्यक्तित्व का दमन करता है। सदस्य एक मशीन के पुर्जे बनकर रह जाते हैं, जो मशीन के साथ ही चलते हैं। व्यक्ति के अपने विचारों का कोई महत्त्व नहीं होता है तथा उसे विचारों की स्वतन्त्रता भी नहीं होती है। समस्त विचार कुछ साँचों में ढल जाते हैं। लीकॉक के अनुसार, "दल के साँचे में ही व्यक्ति का निर्णय तंग रूप में जम जाता है। इस प्रकार सर्वसम्मति आलोचकों को झूठी और हानिकारक दिखाई देती है। ये व्यक्ति के विचारों और कार्यों की स्वतन्त्रता का दमन करते हैं, जो लोकतन्त्र का आधार होती है।"

अस्थायी सरकार — दलीय सरकार कमजोर और अस्थिर होती है। संसदीय शासन में तो बहुदलीय पद्धति पर आधारित सरकार किसी भी समय संसद में पराजित होने पर समाप्त हो जाती है। जहाँ अनेक दल होते हैं वहाँ दल - प्रथा सरकार का संचालन कठिन बना देती है। फ्रांस में सरकार का निरन्तर बनना - बिगड़ना एक सामान्य खेल बन गया था। कभी-कभी दल-बदल सरकार को अस्थिर बना देते हैं। इस प्रकार दल - प्रथा पर आधारित सरकार अस्थायी तथा दुर्बल होती है।

राष्ट्रीय जीवन दूषित होना – राजनीतिक दल पक्षपात व भ्रष्टाचार को जन्म देते हैं। पदों के लिए दलीय आधार पर लूटमार होती है। कुछ नेता दलों के सहारे अपनी सत्ता बना बैठते हैं और भ्रष्ट तरीकों से पद पर बने रहते हैं। चुनाव के समय भिन्न-भिन्न प्रकार के झूठे प्रचार और वायदे किए जाते हैं, मतदाताओं का शोषण किया जाता है। गुट, जाति तथा धर्म के नाम पर वोट माँगे जाते हैं। इससे समस्त राष्ट्रीय जीवन दूषित हो जाता है।

धन का अपव्यय - दल निर्वाचन सम्बन्धी गतिविधियों पर पर्याप्त धन व्यय करते हैं। बड़े-बड़े अधिवेशनों के नाटक होते हैं और लाखों-करोड़ों रुपया व्यर्थ ही व्यय होता है। इसके अतिरिक्त पत्रिकाओं, प्रचार और सार्वजनिक सभाओं पर व्यय होता है। चुनावों पर बड़ी राशि व्यय की जाती है। इस धन को एकत्र करने के लिए दल अनुचित साधनों का प्रयोग करते हैं। सत्ताधारी दल विभिन्न भ्रष्ट तरीकों से धन एकत्र करने का प्रयत्न करता है। इससे भ्रष्टाचार उत्पन्न होता है।

निष्कर्ष

राजनीतिक दलों में अनेक दोष हैं, परन्तु फिर भी इनका होना अनिवार्य है क्योंकि इनके अभाव में लोकतन्त्र का सफल संचालन नहीं हो सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि हम दल प्रणाली के दोषों को दूर करें। दल निश्चित विचारों और सिद्धान्तों पर निर्मित हों तथा जनता सजग, बुद्धिमत्तापूर्ण तथा सच्ची हो। सार्वजनिक जीवन ऊँचा होने पर ही दल प्रणाली समुचित रूप से कार्य कर सकेगी। दल प्रणाली ही एकमात्र साधन है, जिसके द्वारा जनता का अनिश्चित बहुमत शासन पर सुनिश्चित नियन्त्रण करता है। इनके माध्यम से ही सरकार का निर्माण तथा विरोध दोनों ही सम्भव हो पाते हैं। राजनीतिक दल दोषपूर्ण होते हुए भी लोकतन्त्र के लिए अनिवार्य हैं। बर्क के शब्दों में, "दल प्रणाली चाहे पूर्ण रूप से भले के लिए हो या बुरे के लिए, लोकतन्त्र शासन व्यवस्था के लिए अनिवार्य है।" लॉवेल के अनुसार, "राजनीतिक दल अच्छे हैं या बुरे, इस सम्बन्ध में सूचना एकत्र करना वैसा ही है, जैसा इस सम्बन्ध में विचार करना कि हवाएँ तथा समुद्र की लहरें अच्छी हैं या बुरी।" निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि लोकतन्त्र में राजनीतिक दल अपरिहार्य हैं। इनके अभाव में लोकतन्त्र का रथ अपनी वास्तविक मंजिल तक नहीं पहुँच सकता है।

संदर्भ

- ऑस्टीन, ग्रेनविल (1964), कंस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया, नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस ।
- उपाध्याय, कैरोल, (2016), रिइंजरिनयरिंग इंडिया: वर्क, कैप्टिल, क्लास इन एन ऑफ शोर इकॉनमी, दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
- कपिल कुमार, (1984), पीसेंटस इन रिवोल्ट : टेनेंटस, लैंडलोर्डस, काँग्रेस एंड राज इन औध, 1986-1992, नई दिल्ली.
- कोठारी, रजनी, (1970), कास्ट इन इंडिया, हैदराबाद, ब्लैकस्वान.
- कोठारी, रजनी, (1975), डेमोक्रेटिक पॉलिटि एंड सोशल चेंज इन इंडिया : क्राइसिस एंड ऑपरच्यूनिटिस, बंबई, अलाइड प्रकाशन.
- कोठारी, रजनी, (1989), पोलिटिक्स एंड दि पीपल : इन सर्च ऑफ ह्यूमेन इंडिया, दिल्ली, अजन्ता प्रकाशन, खंड, I-II.
- कोठारी, रजनी (1973), पॉलिटिक्स इन इंडिया, ओरियंट ब्लैक स्वान |
- कश्यप, सुभाष, (1955), हिस्टरी ऑफ द पार्लिमेंट ऑफ इंडिया, खंड -2, नई दिल्ली, शिप्रा प्रकाशन ।
- खोसला, माधव (2012), द इंडियन कंस्टीट्यूशन, नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
- गुप्ता, दीपाकर, (2000), इन्टेरोगेटिंग कास्ट : अंडरस्टैडिंग हाइरारकी एंड डिफरेंस इन इंडियन सोसाइटी, पेंगविन.
- गुहा, रंजीत, (1983), ऐलिमेंट्री अस्पेक्टस ऑफ पीसेंट इनसर्जनसी इन कॉलोनियल इंडिया ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली.
- ग्रेनविल ऑस्टिन (2012), दि इंडियन कंस्टीट्यूशन: कार्नरस्टोन ऑफ ए नेशन, नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
- गैल ओम्वेट, (1993), रिइनेवंटिंग रेवल्यूशन : न्यू सोशल मूवमेंटस एंड सोशलिस्ट ट्रेडिशन इन इंडिया, एम. ई. साप्रे, आरमोंक.
- चागला, एम.सी. जी. बी. मुखर्जी, (1977), कंस्टीट्यूशनल एमेंडमेंटस - ए स्टडी, कलकत्ता, रूपक प्रकाशन.
- चंडोक, नीरा (1995), स्टेट एंड सिविल सोसाइटी इन पोलिटिकल थ्योरी, नई दिल्ली, सेज प्रकाशन |